Bodhi-Path Year 2022 January Issue Volume 22 Page No 56-61

बौद्ध साहित्य में समाधि और विपस्सना : विष्लेषणात्मक अध्ययन

लिच्छिवी

पी–एच.डी.षोधार्थी

बौद्ध अध्ययन विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय ,दिल्ली,

राजकुमार सिद्धार्थ गौतम ने ग्रहत्याग के बाद अपने जीवन के छः वर्ष तक कठिन तप किया अपने जीवन के छः वर्ष तक उन्होंने साधना,समाधि और विपस्सना का ही निरन्तर अभ्यास किया था। सिद्धार्थ गौतम ने समाधि और विपस्सना के अभ्यास से ही उन्हें सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति हुई। सम्यक् सम्बोधि प्राप्त के बाद ही सिद्धार्थ गौतम तथागत सम्यक् सम्बुद्ध के नाम से पूरे विष्व में व्यख्यात हुये। सम्यक् सम्बोधि प्राप्ति करने के बाद ही उनके हृदय में विष्व के हर प्राणी के प्रति मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भवना से आप्लावित हुए। भगवान बुद्ध ने इसे लगभग 2500 वर्ष पूर्व खोज निकाला था। बुद्धत्व प्राप्त करने के पस्चात 45 बर्षों तक धर्म का उपदेष दिया, वह नैतिक विचार,त्रिषिक्षा तथा विपस्सना के विषेषतत्वों पर अधिक बल दिया[1]। क्योंकि जन–साधारण इस साधना से प्रत्यक्ष लाभान्वित होते है विपस्सना के अभ्यास से साधक का चित्त निर्मल होता है तथा षुद्ध होता है। ऐसे निर्मल चित्त से हर प्राणी के प्रति मैत्री, करुणा,मुदिता और उपेक्षा की भावना रखते हुये कल्याण चाहता है। इन मैत्री,करुणा,मुदिता और उपेक्षा को ब्रह्मविहार भावना के नाम से जाना जाता है[2]।

पालि साहित्य में विभिन्न स्थानों पर समाधि का वर्णन दिया गया है जैसे–त्रिषिक्षा में समाधि , आर्य अष्टांगिक मार्ग में समाधि, बोंध्यांग में समाधि, इद्रियों में समाधि, बल में समाधि आदि । समाधि और विपस्सना एक–दूसरे के ही पूरक हैं। समाधि का अर्ध–''कुसलचित्तस्सकेग्गता हि समाधि''[3] अर्थात कुसल चित्त की एकाग्रता ही सम्यक् समाधि है शील समाधि और प्रज्ञा के अन्तर्गत आर्य अष्टांगिक मार्ग को तीन भागों में विभक्त किया गया है। इनका वर्णन है–

1. शील के अन्तर्गत–सम्यक् वाक, सम्यक् कर्मान्त, तथा सम्यक् आजीव ।
2. समाधि के अन्तर्गत–सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, तथा सम्यक् समाधि ।
3. प्रज्ञा के अन्तर्गत– सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प[4] ।

---

[1] पालि साहित्य का इतिहास, उपाध्याय, डा.भरतसिंह, प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,पृ 190.

[2] विसुद्धिमग्ग, षास्त्री, स्वमी द्वारिकादास, वाराणसी, बौद्ध भारती, पृ.34

[3] वही. पृ.129

[4], महावग्गपालि,(दीघनिकाय) षास्त्री, स्वमी द्वारिकादास, वाराणसी, बौद्ध भारती, पृ.458.

इनमें से शील से साधना प्रारम्भ होती है, समाधि से साधना का विकास, और प्रज्ञा के सहारे से अपने दुःखनिरोध लक्ष्य को प्राप्त करता है । यह मध्यम मार्ग का ही क्रियात्मक पक्ष विपस्सना है विषेष रूप से देखना ही विपस्सना है, यह विपस्सना प्रज्ञा का मार्ग है । जो साधक नामरूप धर्मों के अनित्य, दुःख तथा अनात्म स्वरूप को विषेष रूप से देखने लगता है तो उसके ज्ञान को विपस्सना ज्ञान कहते है । अनिच्चदिवसेन विविधेन आकारेन पस्सति ति विपस्सना । विसेसेन पससति ति विपस्सना। दीघनिकाय के महासतिपट्ठानसुत्त में विपस्सना का उल्लेख आया है । स्मृतिप्रस्थान के चार प्रकार –कायानुपस्सना, वेदनानुपस्सना, चित्तानुपस्सना और धम्मानुपस्सना [5]। जोकि स्मृति भावना के क्षेत्र है ।

स्मृति (सति) का तात्पर्य है स्मृति को उपस्थित बनाये रखना । पस्सना का अर्थ 'देखना' तथा विपस्सना का अर्थ 'विशेष रूप से देखना' अर्थात स्मृति को वर्तमान में उपस्थित कर अपने षरीर, वेदना,चित्त और धर्म को विशेष रूप देखते हुए ध्यान साधना में लीन हो जाना ही विपस्सना का स्वरूप है। विसुद्धिमग्ग[6] में समाधि का अर्थ–समाधान के रूप दिया गया है। समाधि के दो प्रकार है–उपचार और अर्पणा। अब समाधान क्या ? एक आलम्बन में चित्त–चैतसिकों का एक समान रूप से टिकाना(साधना) ही समाधान कहा गया है। समाधि के बारे में भगवान बुद्ध कहते है–

''समाधि, भिक्खवे, भावेथ समाहिता भिक्खेव भिक्खू यथाभूत पजानातीति[7]।।''

स्मृति मानसिक सावधानी का दूसरा नाम है जिससे व्यक्ति अपनी मानसिक एवं ष्षारीरिक क्रिया को ज्ञान एवं विवके पूर्वक जागरुक रख सके। साधक अपना चित्त अपने वष में कर, अपना भविष्य स्वयं बनाता है कोई दूसरा नहीं। और अपने जीवन को सुखद बनाने में सफल रहता है भगवान बुद्ध ने भी कहा है ''अत्तदीपो भव''[8] अपना दीवक स्वयं बनो। धम्मपद की एक गाथा में भी कहा गया है–

''अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया।
अत्तना हि सुदन्तेद नाथं लभति दुल्लभं[9]।।''

अर्थात मनुष्य अपना स्वामी स्वयं है, कोई उसका दूसरा स्वामी नहीं है। अपने आपको सुन्दर बनाये (काया, वचन, और मन) अपने आपको भली प्रकार से दमन कर लेने पर वह दुर्लभ स्वामित्व को पाता है ।

---

[5] दीघनिकायपालि भाग–2,(महासतिपट्ठासुत्त) षास्त्री, स्वमी द्वारिकादास, वाराणसी, बौद्ध भारती, पृ.527.

[6] विसुद्धिमग्ग, षास्त्री, स्वमी द्वारिकादास, वाराणसी, बौद्ध भारती, पृ.193.

[7] वही,पृ.181

[8] धम्मपदपालि, षास्त्री, स्वमी द्वारिकादास, वाराणसी, बौद्ध भारती, पृ.42.

[9] धम्मपद,(अत्तवग्गो),कौसल्यायन,डॉ.भदन्त आनन्द,नागपुर, बुद्धभूमि प्रकाषन,पृ.50

पालि साहित्य में समाधि और विपस्सना मानवीय मूल्यों पर आधारित है जो मानव जीवन को सुख–षान्ति प्रदान करता है। जिससे मनुष्य की उन्नति होती है, भगवान बुद्ध के अनुसार, चित्त को अन्तर्मुखी करने के लिए जो सक्रिय प्रयत्न है वही साधना है, वही योग साधना का प्राथमिक रूप है। कर्म के मार्ग से हो या ज्ञान के मार्ग से या अन्य किसी उपाय से चित्त की एकाग्रता का सम्पादन आवष्यक है। चित्त के एकाग्र होने पर ही साधना प्रणाली सार्थक होती है। 'योग साधना' षब्द समाधि के अर्थ में प्रयुक्त होता है, साधना, एकाग्रता, समाधि एवं विपस्सना प्रायः एक ही अर्थ है। चित्त ही जीवों के सुख–दुःख के साधन है।[10]

विसुद्धिमग्ग में विपस्सना का फल समापत्ति षमथ–विपस्सना का फल विरोध समापत्ति है विपस्सना ध्यान साधना है, भगवान बुद्ध ने जितने भी उपदेश दिये है, उनका सम्बन्ध शील समाधि और प्रज्ञा से ही हैं। अपने स्वयं की अनुभूतियों के स्तर पर अनित्यता का अनात्मकता का, दुःखता का, अषुभता का बोध ही प्रज्ञा है उसको यथावत देखना, दर्षन करना ही विपस्सना है। ''अनिच्चादिवसेन विविधेन आकारेन पस्सति ति विपस्सना...तत्थ च अनिच्चमेव लक्खण आगतं, न दुक्खंलक्खण अनत्तलक्खणानि । अत्थ वसेन पन आगतानकवानि दट्ठण्वानि ...याहि....अनिच्चं ते दुक्खं तदत्ता ति''[11]। स्वयं भगवान ने कहा है–भिक्षुओ! यह जो चित्त की एकाग्रता यही समाधि है। चारों स्मृति उपस्थान है समाधि के निमित्त और चार सम्यक् प्रधान हैं समाधिकी सामग्री, इन्हीं आठों के सेवन करने, भावना करने तथा बढ़ाने का नाम है समाधि भावना, आनापान स्मृति से चित्त की एकाग्रता उत्पन्न होती है।[12] ध्यान करने चित्त संयम एवं केन्द्रित रहता है। तब धर्मों के अनित्य, दुःख, अनात्म स्वरूप का ज्ञान होता है।इस प्रकार आनापान स्मृति की, ध्यान साधना की भावना, विपस्सना की भावना, तथा समाधि की भावना परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध है, जुड़े हुए हैं। भगवान बुद्ध ने कहा है–

''नत्थि झानं अञ्ञस्स, पञ्ञा नत्थि अझायतो।
सध्मिह झानञ्ञ, स वे निब्बान सन्तिक[13]।।''

अर्थ–प्रज्ञाविहीन(पुरुष)को ध्यान नहीं होता है। ध्यान(एकाग्रता) न करने वाले को प्रज्ञा नहीं हो सकती।जिसमें ध्यान और प्रज्ञा(दोनों) है, वह निर्वाण के समीप है।
विसुद्धिमग्ग में तृष्णा रूपी जटा को काटने का माध्यम–षील ,समाधि एवं प्रज्ञा को बताया गया है ।

''सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो, चित्तंच भवयं।
आतापी निपको भिक्खु, सो इमं विजटये जटं ति[14]।।''

---

[10] अभिधम्मत्थसंगहो, त्रिपाठी,प्रो.रामषंकर, वाराणसी,सम्पूर्णानन्द संस्कृत विष्वविद्यालय, पृ.488
[11] विसुद्धिमग्ग, षास्त्री, स्वमी द्वारिकादास, वाराणसी, बौद्ध भारती, पृ6..
[12] विसुद्धिमग्ग, षास्त्री, स्वमी द्वारिकादास, वाराणसी, बौद्ध भारती, पृ.14
[13] अट्ठसालिनी,पृ.25

अर्थात शील से सम्पन्न(सदाचरण) में प्रतिष्ठित हो कर जो प्रज्ञावान पुरुष जब समाधि और प्रज्ञा की भावना करता है, तब वह उद्योगी तथा ज्ञानवान पुरुष भिक्षु (त्यागी) हो कर इस जंजाल (भवबन्धन) को सुलझा लेता है।

आज के वैज्ञानिक युग में भी विपस्सना भावना उतनी खरी सिद्ध हो रही है जितनी पहले रही है। विपस्सना प्रज्ञा, साधना अन्तिम सोपान है विपस्सना से संसार के बन्धनों को नष्ट कर भवचक्र से मुक्त हो जाता है वह अर्हत्व अवस्था की प्राप्ति रूप अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। इसी हेतु विसुद्धिमग्ग में वर्णित है कि ''सीलेन सोतापन्न सकदागामी भावस्स कारणं पकासितं होति, समाधिना अनागामी भावस्स, पञ्ञाय अरहन्तस्स।''[15] प्रज्ञा का अर्थ– 'प्रत्यक्ष ज्ञान' यानि अपनी अनुभूति से प्राप्त हुआ ज्ञान विपस्सना द्वारा स्वानुभूति से जो ज्ञान जागता है वही प्रत्यक्ष ज्ञान है । पालि तिपिटक में षमथ एवं विपस्सना के कहीं–कहीं एक साथ होने का उल्लेख भी मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप संयुत्तनिकाय[16] के षडायतनवग्ग में विद्यमान षपथ विपस्सना सुत्त में स्पष्ट कहा है कि षमथ एवं विपस्सना असंस्कृत भूमि में जाने का मार्ग है। धर्म के स्वभव का प्रतिवेधन छेदन करना ही प्रज्ञाका लक्षण है–पञ्ञा ति धम्म सभाव पटिवेध लक्खणा। भगवान बुद्ध द्वारा गवेषित विपस्सना से विष्व षान्ति की भावना विपस्यी साधक के मन में जागृत होती है। विष्व प्रसिद्ध विपस्सनाचार्य सत्यनारायण गोयन्का कहते है कि–

मन में मैत्री करुणा रस, वाणी अमृत घोल।
जन–जन के हित के लिए, धर्म वचन नही बोल[17]।।

विपस्सना ध्यान साधक को अन्तर्मुखी बनाता है। वह वर्तमान में जीने की कला सीखाता है। विपस्सना हमें मन का मालिक बनना सिखाता है। जिससे सभी प्रणी धर्माचरण को धारण कर,अपने जीवन में सुख षान्ति और निवार्ण को करते है। जीवन में सुख–षान्ति को बनाये रखने के लिए योग साधना, समाधि और विपस्सना का निरन्तर अभ्यास करते रहना जरूरी है।

वर्तमान समय में प्राप्त भगवान बुद्ध की मूर्तियां, जितनी भी देखने को मिलती है सभी मूर्तियॉ किसी न किसी मुद्रा में ही प्राप्त है जैसे– साधना में लीन, समाधि में अभ्यस्त तथा विपस्सना में लीन । तथागत की इन प्रतिमाओं से हमें यह जानकारी प्राप्त होती है कि जीवन में साधना, समाधि और विपष्यना का कितना अधिक महत्व है । जो केवल मानवीय अधिकारों तक ही सीमित नहीं है,बल्कि सद्व्यवहार, कुशल–कर्म,समाज मैत्री का व्यहार आदि मानवीय मूल्यों पर आधारित है ,जो

---

[14] संयुत्तनिकायपालि, षास्त्री, स्वमी द्वारिकादास, वाराणसी, बौद्ध भारती, पृ.267

[15] विसुद्धिमग्ग, षास्त्री, स्वमी द्वारिकादास, वाराणसी, बौद्ध भारती पृ11..

[16]सयुत्तनिकायपालि,(भाग–3) षास्त्री, स्वमी द्वारिकादास, वाराणसी, बौद्ध भारती, पृ.1111

[17] सत्यनारायण गोयन्का, धर्म–जीवन जीने की कला,सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी,पृ.150.

करुणा,मैत्री, मुदिता ओर उपेक्षा से परिपूर्ण है। अतः इन सद्गुणों का अनुकरण प्रज्ञापूर्वक अर्थात निर्मल चित्त के साथ व्यक्ति को कुषल–अकुषल कर्म का ज्ञान होना, प्रज्ञा का एक आवश्यक सद्गुण है। इस प्रकार प्रज्ञा का पालन करते हुये साधक अपने मन को अपने वष में कर ,अकुषल विचार,द्वेष, राग, ईर्ष्या आदि परित्याग कर देता है महासतिपट्ठानसुत्त के अन्तर्गत सम्यक प्रधान में कहा गया है कि–

1.अकुशल अवस्थओं(अकुशल विचार,द्वेष,राग) को हटाना,

2.इन्हें पुनः उत्पन्न न होने देना,

3.कुशल अवस्थाओं(विचार) जैसे–दान देना, पुण्य कमाना, करुणा,मैत्री की भावना रखना, आदि ऐसे विचारों को उत्तपन्न करना।

4.जो उत्तपन्न कुशल अवस्थाओं को बनाये रखना,[18] यही चार सम्यक् प्रधान है। इस प्रकार मनुष्य अपने कुषल विचारों को उत्तपन्न कर ,अपना और अपने समाज का विकास करता है। भगवान बुद्ध के उपदेष नैतिकता धारण करना सिखाता है नैतिकता का अर्थ ही है कुशल कर्म करने की प्रवृति,लज्जा भय के कारण पाप से बचे रहना का प्रयास। भगवान बुद्ध ने गाथा के माध्यम से कहा है–

सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा ।
सचित्तपरियोपदनं एतं बुद्धान सासनं।।

अर्थात बुराईयों को न करना और अच्छाईयों का सम्पादन करना, अपने चित्त का संयम करना ही बुद्ध का नियम है।[19]

जो व्यक्ति अपने मन को अपने वष नहीं कर पाता हैं। वह मनुष्य तृष्णा से भरा हुआ रहता है तथा वह तृष्णा के कारण आजीवन दुखी रहता है। तृष्णा का अर्थ–अकुषल विचार, द्वेष, राग, ईष्या आदि(पालि–मार कहते है)। इस संसार समस्त दुःखों की जननी तृष्णा है। समाधि और विपस्सना साधक को अन्तर्मुखी बनाता है। वह वर्तमान में जीने की कला सीखाता है। विपस्सना हमें मन का मालिक बनना सिखाता है। विपस्सना के अभ्यास से क्रोध, ईर्ष्या, भय, द्वेष,आदि से मन निर्मल हो जाता है तथा हृदय में सद्भावना जागृत होने लगती है। फलतः वह विष्व षान्ति की कामना करता है। विपस्सना मानव जीवन में एक औषधि का काम करती है। विपस्सना के प्रत्यक्ष लाभ मनोविकारों पर विजय, व्यसन विमुक्ति, विभिन्न प्रकार के तनावों से छुटकारा, स्मरणषक्ति और सृजनषक्ति का विकास,चिंताओं और समस्याओं को दूर करने के लिए आंतरिक बल,उत्साह, साहस, धैर्य मिलता है। विपस्सना करने से अत्यधिक लाभ प्राप्त होते है।

---

[18] पालि साहित्य का इतिहास, उपाध्याय, डा.भरतसिंह, प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,पृ 500.

[19] धम्मपद,(बुद्धवग्गो),),कौसल्यायन,डॉ.भदन्त आनन्द,नागपुर, बुद्धभूमि प्रकाषन, पृ.57

विपस्सना एक दुःखनिवारक वैज्ञानिक विधि है। जीवन का सच्चा आंनद के लिए विपस्सना ही एकमात्र उपाय का साधन है। जो सम्पूर्ण मानव समाज के उत्थान का यही एकमात्र मार्ग है। विपस्सना ध्यान अपने को अपने भीतर खोजने का एक ऐसा अद्भूत आर्य विज्ञान है, जिसको स्वयं की अनुभूति पर उतारने से वह हमें अन्तर्मुखी बनाकर , स्मृति को जागरुक करके, दुःखचक्र से निकाल, धर्मचक्र में ला खड़ा कर देता है। फलतः व्यक्ति के षुद्ध व्यहार में षालीनता व मानसिक स्वास्थ्य में निरन्तर निखार आने लगता है।[20] विकार रहित मन से ही मनुष्य सम्यक् मार्ग का पथिक बन सकता जो स्वस्थ समाल निर्माण के लिए आवष्यक है। इस विषय में बुद्ध का कथन है कि दुःशील और एकाग्रतारहित के सौ वर्ष के जीने से भी षीलवान और ध्यानी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है। सदाचारी एवं ष्षीलवान मनुष्य के विषय में कहा गया है कि–

न पुप्फगन्धो पटिवातमेति, न चन्दनं तगरं मल्लिका वा।
सतञ्च गन्धो पटिवातमेति, सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति।।[21]

अर्थात चन्दन, तगर, चमेली आदि फूलों का सुगन्ध उल्टी हवा में नहीं जा सकता, लेकिन सज्जनों का कीर्ति रूपी सुगन्ध सभी दिषाओं में जाती है।

ये सभी गुण विपष्यना साधना से ही उत्पन्न होते है। अतः बुद्धोपदिष्ट विपश्यना ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा विष्व में स्थायी शान्ति कायम की जा सकती है।

[20] दीघनिकायपालि,(सम्पादक एवं अनुवादक) षास्त्री, स्वमी द्वारिकादास, वाराणसी, बौद्ध भारती, पृ.520
[21]धम्मपद,(पुप्फवग्गो),),कौसल्यायन,डॉ.भदन्त आनन्द,नागपुर, बुद्धभूमि प्रकाषन,पृ.21